पंचम अध्याय

पद परार्ध वक्रता एवं गुप्त जी का काव्य
पचम अध्याय

पद परार्ध वक्रता एवं सुप्रसाद का कायन

पद के पूर्वार्ध के अर्थात् प्रतिपदिक और धातु के प्रयोग-वैचिन्य की भावि पद के परार्ध अर्थात् सुप्रसाद प्रत्यय का विशिष्ट प्रयोग भी करिता की एक विशेषता है। साधारण यह प्रत्यय-रूप होता है, अतः पद-परार्ध-वक्रता को प्रत्यय वक्रता भी कहते हैं। पद-परार्ध-वक्रता के अन्तर्गत कुक्तक ने जिन प्रमुखों का वर्णन किया है, उनका प्रतिपादन ध्वनि के प्रसंग में स्वयं आन्दोलन ने यों किया है -

"सुपुर्दः तिड़ वचन सम्बन्धात्मक कारकशिरिपु !
कृत्त तक्कित - समस्तेष्ठ चोत्त्यूः अक्ष्मी क्रम कायित्वतु।" 1

अर्थात् सुपुर्द, तिड़, वचन, सम्बन्ध, कारक शिरिपु, कृत्त, तक्कित और समस्तेष्ठ अस्तित्वक्रम व्याख्या ध्वनि अभिव्यक्ति होती है। "ब" शब्द से निर्धारण, उपसर्ग, कालार्थ के प्रयोग से अभिव्यक्त होता देखा जाता है। यहाँ ध्वनि के साथ जिन प्रकारों का निर्देश आन्दोलन ने किया है, कुक्तक ने उनका उल्लेख अपने जीतवित में भी किया है। जो आन्दोलन की वृद्धि में ध्वनि के निर्देशक हैं, ही ही कुक्तक के मत में वक्रता के उत्पादक तत्त्व हैं।

काल वैचिन्य वक्रता

कुक्तक के अनुसार जहाँ औचित्य की अंतर्तंत्र से काल रचनीतित्व को प्राप्त हो जाता है, वह काल वैचिन्य वक्रता होती है। विस्तृतः यह रचनीतित्व औचित्य के अंतर्त्रम होने से ही प्राप्त होती है। यदि औचित्य का कोई अनुग्रासन नहीं रहता है, तब यह व्याकरण की बृद्धि सात होकर रह जाती है।

1. हिन्दी ध्वन्यालोक आचार्य विद्येश्वर, पृ 271
कविता की महिमा वर्णन की महिमा होती है। वर्णन की इस महिमा की सिद्धि कवि काल वक्रता के द्वारा प्राप्त करता है। अतीत और भविष्य में ऐसा कुछ नहीं है जिसे कवि अपने वर्णन की परिभाषा में समेट नहीं लेता है। किन्तु कवि की सीमा यह है कि वह स्वयं वर्तमान में जीता है। परिणामतः वह अतीत और भविष्य दोनों को वर्तमान में ही रूपांतरित कर देता है। काल वक्रता का वास्तविक क्षेत्र इसी अतीत और भविष्य को वर्तमान में उतार डालना है। कवि जब समाहित प्रित्य से लिखता है, तब वह काल के इन दोनों धुरों को अपने प्रज्ञावश्य से एक साथ ही देखने लगता है। कस्तूर यह काल वक्रता अच्छी कविता का एक सार्वजनिक गुण है। आज कविता या कला में जो भविष्यवाद का आन्दोलन चला रहा है, इसकी कल्पना भामाह ने भूत पहले "भाविक" नामक गुण में कर ली थी। कुँटक की काल वक्रता उससे कोई भिन्न चीज नहीं है। भामाह इसकी महिमा को स्वीकार करते हुए इसे केवल वाक्य का गुण नहीं प्रत्युत प्रबन्ध का गुण बतलाते हैं। इस गुण के द्वारा कवि द्वारा भूत अथवा भविष्य के जो विचार प्रकट किये जाते हैं वे इतने प्रत्यक्ष करते हैं कि वे वर्तमान के से दीखते हैं। यह भाविक किसी भी महान और हेल्ड कविता के लिए वह प्राथमिक महत्त्व की चीज है, जिसे आधुनिक काव्य में रहना ही चाहिए। कवि यह कहता है जो अपनी दृष्टियों में भूत और भविष्य को वर्तमान से संयुक्त कर देता है।

जब कोई कविता पढ़ता है, तब उसे कविता को कहें पढ़ने चाहें की आकांक्षाओं के आगे प्रत्यक्ष हो जाना चाहिए। पाठक को लगे कि गद्दास उसके सामने घट रही है। यही वह प्रत्यक्ष प्रमाणत है जिसे आर्य सहदेव ने पहली बार वास्तविक के महाकाव्य को सुनकर कहा कि यह उसमें विद्यमान है। कल्पना से जो ऐसे वास्तविकता प्रत्यक्षार्थ होती है, वह भाव से व्युत्पन्न किसी शब्द द्वारा व्यक्त होती है। यही भाव, भावना, भाविक, भावित या उद्भवन है।

भामाह ने बताया है कि भाविक को आहत करने के साधन तौर पर -
राहुलदास भूषण एवं भानुमति

श्यामानाथलाल कचौति

अर्थ की चिन्ता, उदासी और अदभुतता, कथा की अभिवेदनता तथा मायैया की स्वच्छता इस भाविक के निम्नांकन तत्त्व हैं। कथा की पुरातित समूह गति से हो, उसमें रोचकता बढ़ती है जाये, कोई व्यवहार अस्वाभाविक या रहस्यमयता नहीं हो। तब पहले गुण का नम्बर आता है। इसका सम्बन्ध उन विचारों से है, जिनसे कथा अभी गयी है। अर्थ को ऐसा चमत्कार होना चाहिए कि वह कल्पना को उद्देश्य करे। तीसरे गुण का सम्बन्ध दृश्य गुण से हो जाता है।

"भाविक रसोद्वृद्धि के लिए काव्य का सबसे महत्वपूर्ण गुण है। भावना ने एक विलक्षण सोनन्दर्श्चालक परिकल्पना दी थी, जो ममता तक पहुँचते-पहुँचते एक वाक्यालंकार मात्र रह गयी। यह दुःखिता खेद की बात है। कुञ्जक की सोनन्दर्श्चालक तीन दृष्टि ने इसकी गरिमा पकड़ी हो थी और काल बक्रात के रूप में उन्होंने इसी की उद्भावना की थी।"1

यदि आप बीते बातों को इस प्रकार प्रत्यक्ष करें मानो वर्तमान में हो रही हो, तो कहानी आकाश में बनकर चालविकता का रूप धारण करने लगेगी।

इस काल बक्रात की बड़ी रमणीय उद्भावना गुण जो के काव्य में मिलती है, इसी आधार पर उनके काव्य का विवेचन प्रस्तुत है—

'साकेत' नाम रखकर कवि ने अपने लिए कलियों प्रतिबन्धों की सुप्ति कर ली है। रामकथा 'साकेत' में केन्द्रित हो गया है। एक और जहाँ कवि ने राम-बनवास की चौथी वर्ष की अवधि में उमरला की वियोगवस्त्रा का प्रत्यक्ष विचार करने का अवसर खेज निकाला वहाँ उसने बनवास की घटनाओं की चर्चा परोक्ष वर्णना से की। उमरला को प्रमुखता देने के लिए उसे समस्त बालकाण्ड

1. वराकवित सिद्धान्त और एकायाद - पृ. 0 सं. 0 - 379
की कथा छोड़ देनी पड़ी है, जो प्रकाशांतर से दशमूल रंग में विरंधदुर्गार के रूप में वर्णित हुई है। 'साकेत' काव्य का केन्द्र-स्थान साकेत है। साकेत तो प्रामाणित को ही जो भेद तक इस धरती पर रही, तदुपरान्त त्यग चले गयी और उसके स्थान पर अयोध्या की सुभंग हुई। साकेत में जाकर राम-सीता की कहानी प्रायान उमिला की कहानी बन जाती है। और उसी रूप में उसका विकास और संचरण होता है। कवि ने अयोध्या चर्चा से 'साकेत' का शृंखलात्मक किया है-

"देख लो साकेत नगरी है यहीं, स्वर्ग से भिलाने गीत में जा रही।
केतु-पट अंकल-सहुल्ला है उड़ रहे, कलक-कलयों पर अमर-सुग चुड़ रहे।
सोहती है विविध-शालाएँ बड़ी, छत उठाये मिलताईं चितक्षि खड़ी।
नैहियाँ के चार चिरियाँ की लड़ी, छोड़ती है छाप, जो उन पर पड़ी।" 1
अयोध्या के चर्चा के पश्चातु कथा को प्रत्यक्षमाणकर दिया गया, आँखों के सामने एक-एक दृश्य छाने लगते हैं।

जयन्त्र वध की चर्चा शैली रसात्मक है लिस्में भूगोल, धार, करण और शान्त
रसों के मार्मिक स्थलों की नियोजना की गई। कवि ने न्याय का समर्थन,
सत्य का प्रतिपादण और शील का आदर्श यमक करने के लिए यह रचना प्रस्तुत
की है। भारतीय संस्कृति के दामस्कप्त और सीरवन विषयक आदर्शों को प्रत्येक करते
हुए कवि ने अपनी भक्ति भावना को भी अभिव्यक्त किया है। नवयुग की
अनुभवार्थी चेतना को उसने विशेष स्थल से ग्रहण नहीं किया, पर वह पुनर्वृत्त
की वनन्दि इच्छा में चेतना का सुविस्तार कथाकथन का सोनर्न्य स्पष्ट होता है।
हरिजीताका छन्द में खड़ी बोली का सुस्पष्ट संगीत, ख्यातनामा का रसात्मक
वर्णन और युद्ध की मार्मिक प्रसंगोदभावना। सात चर्चा में विश्वस्त कथा-महाभारत
के युद्ध में द्रोण ने दुर्भाग चक्रवत्त की रचना, उसका भेदन करने में
अनुभव के अतिरिक्त सभी पाण्डवों ने अपने को असमर्थ पाया, अभिमन्यु ने इस
कठोर कार्य को स्वयं सम्पन्न करने का दायित्व लिया——

1 साकेत प्रथम सर्ग - पृ 9 -12
"प्रस्तुत हुआ अभिमन्यु रण को शूर पोषण चर्चा का
वह बीर चक्रवर्त्तमान भेदन में सहज सजान था,
निज जनक अपूर्ण तुल्य ही बलवान था, गुणवान था।
हे तात। तजिए सौंच को है काम ही वह क्या क्षेत्र का?
में द्वारा उद्धारित करेना व्यूह-वीच में प्रवेश का।
यों पाण्डवों से कह समर को बीर वह सजित हुआ।
छवि देख उसकी उस समय सुराज भी लजित हुआ।1

सरस्वी। यह काव्य आकार में लघु है और छप्पय पद्धति में रचा गया है।
इसमें द्रोपदी का निष्कालक चरित-चिन्तन अंकित हुआ है। कवि ने इस नायिका-प्रधान काव्य में नारी के उपज्ञात चरित को विचित्र किया है। पाण्डव अपने अजातवास में विराट के यहाँ छद्मवेष धारण करके रहते, द्रोपदी, सरस्वी के
हुन विराट की पत्नी सुदेश्या की दासी बनती है। विराट का साथा सेनापति कीचक, सरस्वी पर कामसूत्र हो उठा। कीचक के प्रस्ताव पर वह संस्कृत हो उठी, अंत में भीम द्वारा कीचक की इहलीला समाप्त हुई। यह एक वर्णनात्मक खण्ड काव्य है।

अभिमन्यु काव्य और विभागनात्मक दोनों पद्धतियों के द्वारा चर्चा वत्स, विनयास और शीत-निगमण किया गया है। गुप्त जो ने कथावस्तु को प्रस्तुत रखते हुए उसके वर्ण में द्रोपदी को प्रधानता दी है। स्वयं कवि ने भी इस काव्य में कीचक की भर्ती की है। इस निर्माणकालिक रचना में उसने चरित्रों को प्रधान बनाने का प्रयास आरम्भ किया है—

जब विराट के यहाँ वीर पाण्डव रहते थे,
छिपे हुए अजात-नास-नाघा सहते थे।
एक बार तब देखा द्रोपदी की शोभा अति,
उस पर मोहित हुआ नीच कीचक सेनापति।
यो प्रकट हुई उसकी दशा द्रुगोचर कर हुप्पड़,
होता अधीर ग्रीष्मात्त गज ज्यों, पुष्परिणी देखकर।2

4 जयचर ध्वज - प्रमाण सर्ग - पूर 0 - 4
2. सरस्वी - पूर 0 संभ -4
बन खेमव - लघु खण्डकाव्य है, जिसमें कवि ने यह दिखाया है कि इसकी भी कार्य होगा उसका खेम ही परिणाम होगा। एक समय जब पाठ्य वनवास भोग रहे थे, तब दुर्गम अपने राजकौशल ठाट्ठाट के साथ उन्हें चिड़ाने के लिए मृणु के बहाने बनाया करता है। वे सुखद चौथाई रात में गढ़वाल के जलालपुर में क्रौड़ा करने लगे। गढ़वाल राज परिवार ने उन्हें बन्धी लिया। कुर्याक्तकर्ताओं पर अर्जुन नेचित्रण से युद्ध दुर्गम को छुड़ाया। इस काव्य में एक राजनीतिक वृत्ति का भी प्रकट हुआ है। भाई-भाई में शशुर्ल होते हुए भी यदि कोई दूसरी .shadow आक्रमण करे तो पारसपरिक वैर-भाव को भूलकर एक हो जाना चाहिए। यह प्रायोगिक कथन है और कवि की राजनीतिक मनोवृत्ति का उद्देश्य। शशुर के व्यंग्य वचनों से 'बन खेमव' प्रारम्भ होता है--

"दुर्गारे भाई बेचारे, जुर्गुं में जो सब कुछ हारे। विपिन में दीन भाव धारे, भटकते है मारा-मारे। न जाने कैसे है वे लोग, यहाँ हम करते हैं सुख-भोग। खबर लें उनकी चलो जरा, कि बन में होगा इंद्रज हरा। वहाँ है निर्मल नीर भरा, और मृणु के योग धरा। शशुर की सुनि यीं गूढ निरा, हेसा दुर्गम हती निरा।"1

'यशोराज' काव्य का कथा-सूच सुनसिद्ध है, परंतु स्वयं यशोधरा कवि कल्पना की सुनित है। अविकारस प्रसंगोद्भवनादि पात्र-कल्पना और स्थान योजना गुंत जो की अपनी सूच है। बुद्धीजीवन का सांस्कृतिक पृष्ठाखर इसकी भूमिका है और नारी सम्मान का आधुनिक भाव इसका मेलदंड। यशोधरा के रामके और नारी तथा गौतम के गृहस्थ और साधक स्वास्थ्य को अध्याय में रखकर कवि ने कलात्मक रूपूर्व और स्वास्थ्य वृत्ति का परिचय दिया है। अवश्य ही बिसंतिक इन संयोग-सौख्य का विचार न होने से उसकी वियोग-द्वेष को आवश्यक पीठिका प्राप्त नहीं हुई है। वस्तुतः यशोधरा कौटिख्य पूर्णभूमि पर चिंतित प्रेमकथा है। सिद्धांत के मन में संसार के प्रति विरिक्त की भावना उत्पन्न हुई और वे दुःख का निदान करने के लिए सन्तान हुए।

1. बन खेमव - 3
"हम इसकी गति चक्र? घूम रहा है कैसा-चक्र।
कैसे परिसम घूम पायें? किन देवों को रोंच-चांच?
पहले अपना कुरतल मनायें, वे सारे से-शुंक।
घूम रहा है कैसा चक्र।"\(^1\)

सिंहराज . जयसिंह बारहवीं शताब्दी में पाटन राज्य का अधिपति हुआ था। इस काव्य में प्रधानत उसके आत्म का रूप या शूरवीरत्व का प्रदर्शन हुआ है। उसके उच्च व्यक्तित्व की दुर्लभता प्रकट की गयी है और तत्कालीन भारत की राजनीतिक परिस्थिति का विचार हुआ है। वह एक फ्रेंच साधारण-संस्थापक के आदर्श से प्रेरित होकर युद्धमुख होता है, पर अन्त में सांस्कृतिक संगम की अनिवार्यता को स्थीरकार कर लेता है। युद्ध-वीरत्व धार्मिक उदारता, आदर्श राज्य-व्यक्तित्व, प्रजा की सौख्य-समृद्धि मातृभूमि-प्रेम, आदि-कोई से काम-से प्रकट किया गया है।

मीलन दे की सौमनाथ प्राशा से कथा प्रारम्भ होती है—
"जननी प्रसिद्ध सिंहराज जयसिंह की।
मीलन दे नाम और काम शुभ जिसका,
मीलनाथ जाती हुई मार्ग में है ठहरी।
बाहर अपूर्व राज धैवत-विकास है,
गज-रज-अर्थवस्ती सेना बहु साथ में।"\(^2\)

'अनित': मुल्त जी ने 'अनित' के मंगलाचरण में ही अपनी जीवनात्मक प्रकट की है।
जीवन के संघर्ष हर्ष के संग सहज हम। यह जीवनात्मक अनित के जीवन में भी
पायी जाती है। वह एक बड़े मौसमी कृषक का विमानपंक्त नबुधक पुजा है।
गाँव का जमींदार अनित के पिता का मानना ताल-नामक उबरे खेत हथियारे

1. वशोधरा — पूर सं - 11
2. सिंहराज — प्रथम सं, 'पूर सं - 7
के इरादे से पुलिस से मिलकर उसे एक वर्ष के लिए जेल भिड़ा देता है। अभिल को कारागार का दण्ड बेलते हुए कई प्रकार के अपराधियों का परिचय प्राप्त होता है।

करागार से कथा प्रारंभ–

मेरा करागार गाँव था, छोटा-मोटा, जिसके चारों ओर उठा ऊंचा पर्रोटा।
उसके भीतर साद–साद ये खेत तथा घर–घर मानो छविदार हिंदु पशुओं के पिंजरे।
इन पिंजरों में एक में सी–सी बननी, हो जाती है हुबा आप ही इनकी बननी।।

हिंदिम्बा . कवि ने राक्षस कुल में मानवता की भावना का उत्कर्ष दिखाते हुए,
हिंदिम्बा के शील की आशा की है। माता कुन्ती के साथ पांचो पाण्डव
लाक्ष–ब्यवस्था से बचकर निकलते।
वन–सर्द में सबसे तुम्हि हुए और भीम ने उसकी
तुम्हि शान्त की।
हिंदिम्बा नव–वधु का वेदा बनाकर रामी में भीम के पास आई और उससे प्रेम की स्पष्ट अभिव्यक्ति की।
यह वीर रस से परिपूर्ण गंगार रस का
अभिव्यक्ति काव्य है।
इसमें कवि की दासनिकता सर्वोपरि है और उसके हिंदिम्बा
के नारात्त को आदर्शवादी परिभाषित प्रदान की है।
हिंदिम्बा का चरित्र और उसकी
मानन्यताएँ,
मानन्यताएँ,
विचारण का परिपूर्ण है।
इस रचना में महाभारतीय
आयुष्य को नवीन अभिव्यक्ति और हिंदिम्बा के चरित्र को नया सौन्दर्य प्राप्त
हुआ है–

"वन में प्रवेश पाण्डु पुत्र हुए गंगा पार।
भीम ने बनाया मार्ग बीन्ड में चढ़के,
कुन्ती जा सकी उन्ही के कन्हियों पर चढ़ के।
मां को लिए वे दिये सहारा भाइयों को भी,
प्रेमते न मार्ग में वे खड़–खड़याँ को भी।"2

विष्णुभाग : गुप्त जी का खण्डकाव्य है। इसमें परिभाषा पत्ति के जीवन
चरित का आयाम करते हुए कवि ने प्रेम के जीवन व्यापी स्थानात्मक रूप का
आलेख किया है। विष्णुभाग सामान्य श्रेणी की गृहीता है उसके जीवन की

1 अभिल – पूरो सं 0–11
2 हिंदिम्बा – पूरो सं 0–8
वास्तविक कहानियों का भी समावेश है: बालक जन्न से कथा प्रारम्भ—

माता शाची, तात जगन्नाथ पुरान्दर थे।

जीर फिर एक बार दिव्य ज्योति जग में।

संकर्षण—तुल्य पहले ही विश्व रूप में थे,
बाल्य में ही गौर से बहुपन लिया उन्हें।"¹

अनन्त्र का नायक मध्य भगवान बुध का साधनावतार माना गया है, वह निष्पाप ही नहीं उसे सदा सच्चि भूतन सेवा अभीष्ट है और उसी के लिए सक्रिय है। गुज्जर जी ने सत्याग्रह की सामयिक प्रेरणा को बौद्ध संस्कृति के आद्यायन के माध्यम से प्रकट किया है। उनकी दृष्टि ने देश की भौगोलिक सीमा में अवरुद्ध हुई न उनकी भावना जातीय जीवन में केंद्रित। उन्होंने बौद्ध संस्कृति से अहिंसा, करूणा और मैथी का आदर्श ग्रहण किया तथा मानवता दर्श को चरित्र की रेखाओं में उभारा। रात्रि वर्षन से कथा प्रारम्भ—

"यह हो मई है रात। अब शांति या संयम।

यह एक काला वस्त्र, इसमें छिपे सो शस्त्र।

कोई करेगा आण, कोई हरेगा प्राण।

निज कार्य अब प्रच्छन्न, दूध प्रकृति अवस्थन।"²

लीला पद्म नाथ में वस्तु योजना ही संबोधित है, नर्तक की महत्ता, नारी का उत्कृष्ट। सीता के साथ—साथ उर्मिला के मन में भी पुष्प वालंका प्रसंग में पूर्वराग का उद्योग तथा परसुराम का स्वर्ग भोग की अपेक्षा जीवन की गति को श्रेष्ठ समझना गुज्जर जी नवीन जीवन—दृष्टि तथा उर्मिला विश्वयक नयी प्रसंग—कल्पना का परिचयक है। राम का लोकोत्सव उनकी श्रद्धा—भक्ति का विषय है और उन्होंने कोई बुद्धिवादी प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं की। मृणया से कथा—प्रारम्भ

1. विष्णु प्रिया — पृ. ० सं ० — १०
2. अनन्त्र — पृ. ० सं ० — ८
"अर्जन, आज मूढ़ार्य चलोगे? मूढ़ार्य तुम्हको भाली हे?
आँग स्पूर्ति, लक्ष्य-लाघुता भी उससे कैसे आती है?
मेरी इच्छा है कि सिंह से आज नियुक्त मचाउँ मैं?
दोनों पिछले पंजों के बल उसको नाना नचाउँ मैं।" 1

अर्जन और विसर्जन  'अर्जन' शैर्क आध्यात्मिक रचना में सीरिया की राजधानी दमितक पर अरबों के आक्रमण का वर्णन हुआ है। इस्लामी-प्रचार का विचार देते हुए कवि ने धर्म-परिवर्तन की घटना को प्रेम-कथा के साथ ग्रहित कर दिया है। नवीनका इल्डॊलिया धर्म-निन्दा, देश-भक्ति तथा अनन्य प्रेममयी है और प्रेमी विख्यात तथा देश-प्रेमी हो जाने पर वह प्राण-स्वाद करके अपने आदर्श की रक्षा करती है। 'विसर्जन' रचना में अरबों का उत्तरी अफ़रीका पर आक्रमण निरंपित हुआ है। अरब के प्रथम खलीफ़ा से कथा प्रारम्भ होती है–

"प्रथम खलीफ़ा अबुबकर क्या मदीने में,
उत्सुक इसी से मृत्यु-स्थमा या जीते हैं
नेत्र मूँहने के पूर्व लिन चिर-निन्दा में,
सुन ले विजय-यक्ष जैसे बने करों से।" 2

'विकट भूमि' ओजमरी आध्यात्मिक रचना है। इसका आध्यात्म जोधपुर राज्य के इतिहास से लिया गया है। एक दिन जोधपुर के मध्य विजय सिंह पोकरण के सामने देवी सिंह से पूछ बैठे कि वे रुढ़ जाएं तो क्या करें? स्वामीभक्त देवीसिंह का संकेत उत्तर था कि वह 'नवकौटि मारवाड़' को उलट दे, क्योंकि जोधपुर तो उसकी कटारी की परंपरा में पड़ा रहता है, इस उत्तर के लिए देवीसिंह को दूसरे दिन मरना पड़ा। इसमें मध्ययुगीन राजपूतों की विलक्षण जातीय विशेषताओं का बिरचन-प्रदर्शक विचार किया गया है।

"ओरों से हटा के रित र्वर्ष-रुपरा-पाप को,
सहसा विजय सिंह राजा जोधपुर के,

1. लीला - पू 0 - 11.
2. अर्जन और विसर्जन - पू 0 सं 0 -3
पीकरण वाले सरदार देवीसिंह से
बोले दरबार खास में कि–देवीसिंह जी,
कोई यदि रुढ़ जाय मुझसे तो क्या करे।"1

जहाँ काल–वैचित्र्य वक्रता का प्रश्न है श्री गुप्त जी का प्रत्यक्ष काव्य किसी काल घटना से अवश्य प्रारम्भ हुआ है।

वचन – वक्रता

काव्य में वैचित्र्य उत्पन्न करने के लिए जहाँ कवि जान, स्वच्छता वचन का विपर्यय कर देते हैं, वहाँ कुसुम के मन से वचन वक्रता होती है।

इसका मतलब यह है कि कभी–कभी एक वचन द्विवचन के स्थान पर भ्रमण या भ्रमण के स्थान पर एक वचन आदि का प्रयोग करने से काव्य में विशेष चमकार उत्पन्न हो जाता है। अरस्तु ने भाषण कला में भी वचन वक्रता माना है, अरस्तु वचनों द्वारा वक्रता। इसी आधार पर गुप्त जी के काव्य का विवेचन प्रस्तुत है–

1) "अजी तुम जग गये,
स्वन–निधि से नयन कब से लग गये?
मोहिनी ने मन्त्र पढ़ जाय से खुशा
जागरण स्वच्छर तुम्हें जाय से खुशा।"2

स्वन निधि और जागरण में वचन वक्रता।

2) "भें पूछा हूं चीर का रण में यही क्या धर्म है।"3

अभिमन्यु ने महारथियों से पूछा कि अपने पर शरार करना क्या यही शान्त धर्म है।

1. विकट भट्ट – 3
2. साकेत प्रथम सर्ग – पूरा – 19
3. जयश्री वच – प्रथम सर्ग – 15
"नमन उन्हें है निष्टुर कहते,
पर इसे जो आँधू बहते,
सहदय, हुदय वे कैसे सहते?
गये उतरस ही खाते,
लखि वे मुझसे कहकर जाते।" ¹

यशोधरा का उपालम्ब के पति बिना बताये ही चले गये, यदि कहकर जाते तो सिद्दि हेदु स्वयं तैयार कर देती।

"समझ फुले अविधि ही अपना
कुछ अतिव विलेगा क्या?
पत्त्वर मिलिए किन्तु तुम्हारा
तब भी हुदय मिलेगा क्या?" ²

"किस पर वह चौका, वह चाक, बनता वहाँ मूतक पशु-पाक
ऐसे कर्म और यह ढोंग, हँज़कर्ण हो तुम या पोंग।" ³

"पुज्र नहीं, मैं श्रदु तुम्हारा हूँ बढ़ी, गया न करके व्याह, बहुत समझो यहीं
वह इस कारण, चले मुझे तुम सारकर, पर लौटे कुछ सोच, गये संकल्प कर।" ⁴

"क्या स्त्रिया नहीं मैं बोलो, पर तुम कैसे श्रदु हो।
इतने निफ़िश ठाकर भी जो, बनते यं ग्वजन प्रिय हो।" ⁵

"सुनिए महाशय, क्या संकल्प है आपको?
जाना बस, आपने है दूत के प्रताप को?
किन्तु यह।" ⁶

---

1. यशोधरा - 22
2. चंचली - 9
3. हिन्दू - 230
4. उच्चवास - 65
5. प्रदेशिय - 42
6. लीला - 96
"आपकर आप यहा मुझको मुलाय गये। जानी फिर क्यों मे क्यों न रह गई सोती ही? जानती थी चचक न होगे, दिदा लेने थे।"

"कोन जानता था मायावी तेरी ऐसी कुशल कला। आख मिर्ची का ढोंगा में, सचमुच तूने मुझे छला।"

"हो किन्तु राज्य में अस्त्तौष, तो पूर्ण रहे क्या राज-कोष। पर जिनके घन से महाराज, है पूर्ण हमारा कोष आज।"

"प्रामीण गीत यदा कदा वे गान करते हैं सबी, है फाल उनका राण बहुधा और उत्सव भी बही। पर जित्ता को वे दीन जन किस भीति बहलाया करे। क्या आँखों से ही उसे वे नित्य नहलाया करे॥"

"मैने पूछा - पुत्र हुए तुम बाक्कू कैसे? पुलिस कृपा से? नहीं बताया उसने ऐसे॥"

"हम अवलाे तो एक की, होकर रहती सदा। तुम पुत्रुं को सों भी नहीं, होती है तूफ़ि-ग्राह॥"

"शोक तो उसकी मति पर शोक बना क्या, बिगड़ा जब परलोक विजय है वहीं कि सब संसार करे पीछे भी जव-जयकार॥"

"राना के किशोर सुकुमार दो कुमार थे, मारा उनको भी स्वयं यह कह उसने साप के संगुलिए भी छोड़े नहीं जाते है॥"
"देख कहीं दो बूढ़े नेत्र जल, तुम गल गये तृप्त। जान लिया तो बस मिठटी के पुतले हो तुम सत्ता।"¹

"धन यह स्वार्थ तुम्हारा और स्वय तुम धनय, मेरी कृति में मतुयाच्छ से श्रेष्ठ नहीं कुछ अन्य।"²

इन सभी उदाहरणों में व्यंग्योक्ति है जो अरस्तू के शब्दों में बचनवक्रता है, इससे एक विशेष प्रकार का चमत्कार प्रस्तुत हुआ है।

उपसर्ग वक्रता

संस्कृत के व्यक्तिगत के अनुसार पद चार प्रकार के होते हैं - नाम, आव्यूह, उपसर्ग और निपात। नाम संज्ञा पद को कहते हैं आव्यूह धातु को। पद पूर्वांग और पद परांग - वक्रता उन पदों के विभिन्न विन्यास में देखी जाती है, जो नाम और आव्यूह पद रूप हैं।

धातु से पूर्व आने वाले प्र, परा आदि की संज्ञा उपसर्ग है और अव्यय माल को निपात के नाम से पुकारते हैं। उपसर्ग और निपात अव्युत्तम पद हैं क्योंकि ये प्रौढ़-प्रत्यय विभाग की संबंधित से परे रहा करते हैं। उपसर्ग और निपात भी अपने विभिन्न उपनिपात से रसभाव का परिपात किया करते हैं। कुलका का बिचार है कि पद के पूर्वांग और परांग की वक्रता अथवा विकिरण से विलक्षण वह पद वक्रता है, जिसमें उपसर्ग और निपात के ही द्वारा कार्य करने में व्याप्त रस भाव का स्पष्ट होता है। क्षेमेन्द्र का कहना है कि योग्य उपसर्ग का भोग होने से निरबन्ध गुण युक्त सुकृति रमणीयता में इस प्रकार अधिक बढ़ जाती है, जैसे सन्मार्ग का अवलम्बन करने से सम्पूर्ण बढ़ती है। ‘प्र’ आदि उचित उपसर्गों के कारण सुन्दर उन्नतिशील हो जाती है, जैसे ऐसवर्त सन्मार्ग सम्म से उन्नतिशील होता है - श्री गुरुजी के समस्त काय्य में उपसर्गों का चमत्कारी उपयोग जगह-जगह मिलता है, कहीं कहीं तो उनकी दीप्ति से सम्पूर्ण काय्य ही आतोलित किया हो उठता है।

1. द्वारक - 80
2. पृथ्वी पुत्र - 9
1) "कहते आते थे यद्वी अभी नरसेही।
माता न कुमाता, पुज़ कुपुर्य भले ही।"¹

2) "अविकार खो कर बैठे रहा यह महा दुष्करम है,
न्यायार्थ अपने बन्धु को भी दण्ड देना धर्म है।"²

3) "मिकला वहाँ कौन उन जैसा पुक्क-परापुकमकारी।
आयुगु दे चुके परीक्षा, अब है मेरी बाबी।"³

4) "करता है पशु वर्ग किन्नु व्या
निज निसर्ग नियमों का लोप।"⁴

5) "वह अविलम्ब भोग का भोग, अनालस्य अविचल उद्धोग
वह जीवन का सुखमय स्वर्ग, और मृत्यु में भी अपवर्ग।"⁵

6) "अरे न लोटेगा व्या अब भी ओ दुर्युत्त दुर्युत्त।
आ, न लोट इठलाता है व्या है तू उद्दत अतुदात।"⁶

7) "नाहीं कर सकते वे कैसे, न्यायनिरत, मिश्रित-नियम।"⁷

8) "यहाँ दर्शकों की आँखों के बने विमल तारे।
सुनने कमल से मंगल मुख हैं।"⁸

9) "रक्त सुका किन्नु वहीं दूनी अनुकतता।
पीछे सिर टेक देखतो से कहा - उसने।"⁹
राजा सुधारिक पिता इसका भाला था, मैंने परन्तु रण में उसको छला था।”

“इसमें वह अभिमन्नित जल था, जिसमें अभिमन्नित का बल था।”

अभिमन्नित उन्हें है दैन्य, यह है उन्हों की रीति। मैं अधर्म अनीति।”

“वे ईश्वर निपमों की कभी अच्छेलना करते न थे। चिन्ता-पुर्ण अशानि-पूर्वक वे कभी मरते न थे।”

इस दुर्भिष्ठ का नहीं दीखता आज निवारण।

पिर भी यदि दर्द उन्होंने मुझको माना।”

इस अनान पड़ जन के ऊपर समुचित इससे रोश नहीं।”

हैं देख रहे ऊपर अमृत नीचे नर क्षा कर रहे।

दुःखित में चुप है तो सुरज मुइँतों पर क्षण मर रहे।”

“मत यह यमन कहें सो क्षा अनाथ हूं।

बर मिसे मैं उस दुर्रें के हाय हूं।”

“किया प्रजापति ने माता से देवी का सम्मान।

अभिमन्नित निज नीर-कमण्डलु विधि ने किया प्रदान।”

जानकी कपी आग आपार, चुराने का करके कुविचार।”

1. चन्द्रहास - प्रथम - 17
2. संकार - 43
3. अनंम - 15
4. भारत-भारती - 16
5. अभिनत - 29
6. किसान - 13
7. सैरली - 7
8. हिंदिया - 24
9. श्रीकंत - 10
10. चन गीत - 3
"अधम, अधर्मी, अक्रतत स अनाचारिः।"¹

आतंत अचेत-सा आभासग मिरा आप भी।
शृङ्ग सैनिकं के दूरं मं अशु आ गये।"²

"झूठी बात। अपना अनादर भला नहीं।
अथ्य तुम्हारा आभिज्ञता-अभिमान।"³

"बन जाता है अशिव भयंकर, कभी स्वयं शंकर भी।
दूरःदिन कर देता है दिन को, असमय का जलयर भी।"⁴

अति दारुण दुःखान,
यत्न क्या जब देवों की हुई कुटुंब करता।"⁵

रेखाकिं शब्दावश ‘उपसर्ग’ है जो शब्द में चमत्कार उत्पन्न कर
रहे हैं।

प्रत्यय - वक्रता

कभी-कभी छोटे-छोटे प्रत्ययों का प्रयोग भी बड़े से बड़ा चमत्कार पैदा कर देता
है। यह प्रत्यय वक्रता तिड़, आदि प्रत्यय से विहित अन्य प्रत्यय के स्थान्य में
दबी जा सकती है। वस्तुतः इसमें एक प्रत्यय से किया हुआ दूसरा प्रत्यय
किसी अपूर्व स्थान का परित्याग करता है। याँ तो समग्र पद परास्यवक्रता प्रत्यय
वक्रता ही चमत्कार है। इसलिए पदपरायें वक्रता प्रत्यय वक्रता भी कहीं गई
है; किन्तु यहाँ पर प्रत्यय वक्रता का प्रयोग अपेक्षण सीमित अर्थ में किया
गया है। एक प्रत्यय के तारात्मय में दूसरा प्रत्यय लगाकर कहीं कहीं प्रतिभा

1. विकट भट - 6
2. अर्जन और विसर्जन - 18
3. सिंधुराज - दूरीय सर्ग- 45
4. द्वापर - 35
5. पृथ्वी पुज - 25
सम्पन्न कवि किसी अभिव्यक्तियों सी भट्टरों का स्पृहण कर देता है, अतएव कुर्सक ने 
इसे प्रत्येक वक्ता की संख्या दी है। इस सम्बन्ध मे ध्यान देने योग्य बात यह है 
कि हिंदी भाषा की विशेषतात्मक प्रकृति के कारण हिंदी में प्रत्यय की स्थिति 
उतनी स्पष्ट और महत्वपूर्ण नहीं है, जितनी कि वह संस्कृत में है। संस्कृत के 
सूक्ष्म और विद्वान पदों के जैसा प्रत्यय का पुष्कर अस्तित्व तो हिंदी में है ही नही। 
पुनः जी के समस्त काव्यों में प्रत्यय-विशेषकर विश्लेषण है, जो उनकी अपनी एक 
विशेषता है।

1. "भूल जाता दम्र निज नागरिक्ता का तू। 
किन्तु मैंने देखा है, इसीसे कहती हूँ मैं।"

2. "चुटकू न होकर बाल बनी थी, पतल प्रेयरा बांकी।"

3. आपके सुगमत-हेतु नहीं नहीं उनको, 
किन्तु आपको भी कुछ यत्न करणीज है।"

4. जिसने झूठी साख भराकर दंड दिलाया।
बही जगान्त्यादार बना, जगती की माया।"

5. विद्या भिना अब देख लो, हम दुर्गंधों के दास हैं।
है तो मनुष्य हम किन्तु रहते दनुष्ठता के पास हैं।"

6. "जिन्हें घूणा करते हो वे ही, है इस योग्य कि प्यार करो। 
अपने मनुष्ठता का उनके, सिय दे नम उदार करो।"

<p>| | |</p>
<table>
<thead>
<tr>
<th></th>
<th></th>
</tr>
</thead>
<tbody>
<tr>
<td>1</td>
<td>पुराण - 60</td>
</tr>
<tr>
<td>2</td>
<td>झापर - 103</td>
</tr>
<tr>
<td>3</td>
<td>सिद्धार्ज - द्वितीय संस्करण - 22</td>
</tr>
<tr>
<td>4</td>
<td>अनित - 61</td>
</tr>
<tr>
<td>5</td>
<td>भारत-भारती - 126</td>
</tr>
<tr>
<td>6</td>
<td>अनन्द - 63</td>
</tr>
</tbody>
</table>
"क्या मरना भी अपने अधीन।
जीवन मेरे दयनीय दीन।"1

"मुख पर उत्सुकता पूर्ण कालित!
करती सुधांशु की प्रकट श्रान्ति।"2

"भन भन करता यह काल-व्याल
मुँहें विषाण्त वसुधा विशाल।"3

"पहले वचन देखकर समय पालते हैं जो नहीं।
बे हैं प्रतिज्ञा-पालकारी निन्दनीय सभी कही।"4

"अनुमोदक तो नहीं कितनु निज,
अंग्रेज का अनुत्त खूं में।"5

"ओ मेरे अभिमानी,
राह अन्त में वाचक ही तू होकर भी चिरदानी।"6

"पश्चात के वे अविष्कार, कर बैठे कितना संहार।
किसका वह धैर्यनत धन्य देखे जो जड़ में धृतत्व।"7

"कीट-पूर्ण है कुसुम, कष्टकित नहीं सही।
जो सबसे बच निकल चले विषयी वही।"8

1 विष्णुप्रिया - 60
2 लोला - पूं 50 - 52
3 यशोधरा - 19
4 जयमध्य वीर - पंचम सर्ग - 55
5 प्रदेशिणा - 70
6 उच्चवाला - 56
7 हिन्दू - 117
8 साकेत - पंचम सर्ग - 69
"यह कहकर प्रभु ने दोनों पर, पुलकित होकर शुद्ध षुंघङ्ग-भूल।
उन दोनों के पीछों के बरसाये नब विकसित फूल।" ¹

"अतुलित जो है उर्वर अलोकिक उसका वह आनन्।" ²

"अब भी मेरा कहा मान हट छोड़ हटीली।
प्रकृति भली है सरल और तनु-चंद्र गटीली।" ³

"उकट किया जिसका पामरण है?
भाइयों को सेवक करके।" ⁴

"छोड़ लिये किसने वे तारे इस वीच में
पूर्ले मधि-पद्म थे जो कालिमा की कीच में।" ⁵

"बढ़े कस्त से फिर वह भोली — नामानी रहने दो।
मेरी ही शोषित गुरुमं के आसपास बहने दो।" ⁶

"शुच्च हुआ दानव फिर गरजा हुआ धैर्य से तपकत।
रिपु रूपी तुषण के चरणे के है वह पशुला व्यक्त।" ⁷

"कारण कीर्ति कोषवाली परतली में उसकी
सच्ची वात कहने से आप रूढ़ जानिए।" ⁸

"जैसी धृष्टता की फल वैसा कभी न भोगेया।
वेरी है विद्वान् नहीं अतिथि हमारा दू।" ⁹

---

1. पंचवटी - 48
2. लंकार - 17
3. शरत्रू - 38
4. वन धीभव - 25
5. हिन्दिम्बा - 27
6. किसान - 40
7. शनित - 17
8. विकट भट - 16
9. अर्जन और विरजन - 9
निपात - बक्रता

"निपात ऐसा सहायक शब्द-भूमिका है, जिसमें वे शब्द आते हैं जिनके प्रायः अपने शब्दावलि सम्बन्धी तथा वक्तुपरक अर्थ नहीं होते हैं। निपातों का अन्य शब्द भेदों से इस बात का अंतर है कि अन्य शब्द भेदों अर्थात् सजीव, विशेषण, सर्वनाम, क्रिया, क्रिया-विशेषण आदि का अर्थ होता है, किन्तु निपातों का नहीं। योजनाओं तथा विभिन्न चिन्हों के द्वारा निस्संदेह से वाक्य में व्याकरणपरक सम्बन्ध व्यक्त होते हैं, निपातों के विषय में वैसी बात नहीं है। निपातों का यह मतियों शब्द, शब्द समुदाय या पूरे वाक्य को अतिरिक्त भावार्थ प्रदान करने के लिए होता है।

निपात वक्तुतावरक अन्यत्पन पद होते हैं, कुछ कवि रस-निषेध के लिए उनका भी शब्दालक प्रयोग करता है। कुलक की तरह कैमेन्द्र ने भी निपातों के महत्त्व को रखकायित किया है। उनके अनुसार-उचित स्थान पर नियुक्त उपयोगी सविचारों के कारण निस्संदेह राज्य-लक्ष्मी निश्चित हो जाती है, उसी प्रकार उचित स्थान पर प्रयुक्त उपयोगी निपातों के यह प्रयोग से काव्य की अर्थ-संगति ठीक बनी जाती है। निपातों के यह प्रयोग से वाक्य का समग्र अर्थ प्रभावित होता है,

1. चन्द्रसान-प्रथम - 25
हिंदी में अधिकांश निपात उस शब्द-समुदाय के बाद आते हैं जिसको वे विशिष्टता या बल प्रदान करते हैं। शब्दों या पूरे वाक्य को निपात जो अर्थ प्रदान करते हैं उनके अनुसार निपातों का वर्गीकरण इस प्रकार है—

1. स्वीकारार्थ निपात — हाँ, जी, जी हाँ।
2. नकारार्थ निपात — नहीं, जी नहीं।
3. निषेध बोधक निपात — मत।
4. प्रसन्नबोधक निपात — क्या-क्या?
5. बल प्रदायक व सीमा बोधक — तो, ही, भी तक, भर, केवल।
6. विस्मयावदिबोधक निपात — क्या। हाँ।

स्वीकारार्थ और नकारार्थ निपात अपेक्षा कम चमत्कारी होते हैं। वे जीवन के व्यवहार से सम्बन्धित होते हैं, और कवियों में उनका चमत्कार नहीं के बराबर देखा जाता है, किन्तु निषेधात्मक रूप से यह सिद्धांत प्रतिपादित नहीं किया जा सकता कि कोई कुशल कवि उनका रमणीय प्रयोग ही नहीं करेगा। श्री गुट्ट ने समस्त निपातों का सुन्दर प्रयोग अपने काव्यों में किया है, इसी आधार पर विवेचन प्रस्तुत है।

1. "हाँ जन कर भी मैंने भरत को न जाना।
सब सुन लें, तुमने स्वयं अभी यह मान।"¹
यहाँ स्वीकारार्थ निपात है।

2. "उहरी मत रोको मुझे, कहूँ सो सुन लो।
पाओ यदि उसमें सार उसे सब सुन लो।"²
यहाँ आश्वासन तथा निपयावल्क निपात है।

3. "हाँ! वह हमारा पुज्य प्यारा फिर मिलेगा क्या कभी-कभी?
अभिमन्यु को मूत देखकर भी हाय! में जीती रही।"³
यहाँ विस्मयावदि शोक निपात है।

1. सातक्त 5 अभ्यं सर्ग - पूर 50 - 120
2. वही - वही - वही
3. जयद्रथ - वध - तृतीय सर्ग - 38
"है चिरह यह दुस्सह तुम्हारा हम इसे कैसे सहें?
अर्जुन, सुभ्रा, ब्रौपिदी से हाय! अब हम क्या कहें?" ¹
प्रश्न बोधक निपात

"अपणकुन आज परन्तु मुझको हो रहे सच जानिए।
मत जाइए सम्स्ति समर में प्रार्थना यह मानिए।" ²
निवेदनात्मक निपात।

"हे पार्थ! प्रश्न पालन करो, देखो अभी बिन शेष है।" ³
आजादाचक निपात

"सबका स्वामत—स्त्रकार करो तुम तब लो।
में करँ स्वयं करणीय कार्य सब जब लो।" ⁴
आजादाचक निपात

"निफल रब रोर धीरता — किसमे है वह बीर्य बीरता?" ⁵
प्रश्न निपात

"हुए क्यों मीन फिर तुम हाय! बोलो।
उठो, आदेश हो निज नेन खोलो।" ⁶
विश्वासद स्वीकार निपात।

"इन पर भी तो प्रिये ललाईं चढ़ रहें।
मानो फिर वे इन्हें हराकर, बढ़ रहें।" ⁷
सीमा बोधक निपात

1. जन्मद्रव वध – द्वितीय सर्ग – 23
2. वही – प्रथम सर्ग – 6
3. वही – दूसर सर्ग – 71
4. साकेत – अष्टम सर्ग – 117
5. साकेत – दशम सर्ग – पृ० सौ – 192
6. साकेत – तृतीय सर्ग – पृ० सौ – 37
7. साकेत – पंचम सर्ग – पृ० सौ – 76
"चुप रह चुप रह हाय अभाने! 
रोता है अब किसके आमे?"1
अज्ञावाचक, शोक एवं प्रश्न निपाल

"बार-बार धीमार किन्नु यदि रहे मृत्यु का शोष धाय। 
अभू पुज्ञ उठ, कुछ उपयोग कर, चल चुप हार न बैठ हाय।"2
अज्ञा, शोक निपाल

"फिर क्या पूरा पहचाना? मैंने मुख्य उसी को जाना।"3
प्रश्न निपाल

"नाथ दुम जाओ किन्नु लौट आओ मे, आओ मे, आओ मे,।"4
अज्ञा निपाल

"युधे बलाओं कि तुम कोन हो? और चाहती हो तुम क्या।"5
प्रश्न निपाल

"चलो नदी को पढ़े उठा लो, करो और पुरुषार्थ श्रम।"6
अज्ञावाचक निपाल।

"किन्नु हाय! स्वार्थी संसार। कब तक रहता उच्च उदार।"7
शोक प्रश्न निपाल।

"कहाँ तुम्हारा वह उत्साह? क्यों ने नसों में रूढ़िर- प्रवाह?
हुई निराशा क्यों यह चोर? उदासीन तुम अपनी और।"8
प्रश्न निपाल।

1 यशोधरा - पू 0 सं 0 - 46
2 वही 5 पू 0 सं 0 - 13
3 वही 5 पू 0 सं 0 - 21
4 वही 5 पू 0 सं 0 - 23
5 पंचवटी - 34
6 वही - पू 0 - 47
7 जिन्दू - 36
8 वही - पू 0 सं 0 - 81
"न आंगन न होनी भास्त, बढ़ो करो जडता नष्ट।
यात्रा के आनुभव-आनन्द, प्राप्त करो, विचरो स्वच्छन्द।"  
आज्ञावाचक निपाल।

"रख न सके हम उसे मत्त आदर करके भी।
जी न भरा हम देख रहे थे जी भरके भी।
पा सकते है नहीं कदाचित अब मरके भी।
रह सकते हाँ! आज कहीं धीरज मरके भी।"  
सीमाओंक तथा शोक निपाल।

"हत भाग्य हाय। हम हैं काटों-भरे पड़े जो,
सबने स्वभाग्य भेजे।
हाँ तात! जा रहे तुम आज छूटकर यो, परवश नहीं तुम्हारा
हम रह गये गहन में क्यों हाय! छूटकर यो, पर दोष क्या हमारा।"  
शोक निपाल।

"हाय आर्य! उद्योग छोड़कर हुए भाग्यवादी क्या आप।"  
प्रश्न निपाल।

"हाँ स्वामी कहना था क्या क्या, कह न सकी करों का दोष।"  
प्रश्न तथा शोक निपाल।

"निकल यहाँ से शत्रु-शरण जा, जिसके गुण पर लुभ्य हुआ।"  
आज्ञा निपाल।

"आप किस दीप के नरेण्द्र-कुल-दीप हैं।"  
प्रश्न निपाल

1. हिन्दू - 209
2. उच्चवाद - 14
3. वशी - 54
4. प्रदक्षिणा - 23
5. वशी -
6. वशी - 61
7. शीता - 90
"यह क्या, यह क्या, मुले! अहा। ये तो बालक है।"  
सिम्यादि निपात।

"अब भी खाने जनती हीर, अब भी है रघुवंशी बीर।  
अब भी सागर बना अयाह, अब भागीरथी—प्रवाह।"  
सीमाभोजक निपात

"हाय साही तुने यह क्या कर दिया अभी।  
कैसी एक हुक्—सी उठा दी इस उर में।"  
प्रन विन्यादि निपात

"भीरा यों अभीरा न हो, ऐसा नरदेव क्या,  
देखा कभी तूने? अभी देखते ही इसको।"  
अआ तथा सीमाभोजक निपात।

"देखो इन दो में है तुम्हारा जन कौन—सा।"  
प्रन निपात।

" न संकोच देते हैं तुले, अहा! कौन सा महोदार है।"  
सिम्यादि बोधक निपात।

"करेगा जो कर्ता अनुचित न होगा कभी।  
उसी में प्रकटित होगे हमारे शुभ सभी।"  
सीमाभोजक निपात।

इत समय न छेड़ें, मुले काम है।"  
निपेन्द्र निपात।
“इतनी मूल्यवान हुई हाय। मति मोहम्मद।
तेरी कहाना पुनः हैंसी में बदल गयी।”1
शोक निराला।

“सब कहें अपनी, सुनै तब कोन किसकी चाल।
जाय तम का ठन्ड कैसे सोह की है रात।”2
प्रश्न निराला।

“आ बन्धु इतना बोल, देगा तुम्हें पथ-शोध
होगा अवस्थ सुधार, समझो इसे उपहार।”3
हर्ष निराला।

“मानों न और प्रमाद, यह आज की है याद।
हे वर्ष जिनका सैन्य, अनुभव उन्हें हे दैनिक।”4
आग्नेय निराला।

“कौन जानता मौन भाषा का भेद है।”5
प्रश्न निराला।

“पर हाय इस उदाहन का कुछ दूसरा ही हाल है।
पतसढ़ कहें या सुखना, काया पलट या काल है।”6
शोक निराला।

“तुम कौन जिनके लिए हमको यहाँ अवकाश हो,
सुख भोगते हैं हम हमें क्या जो किसी का नाश हो।”7
प्रश्न निराला।

1. झंकार - 64
2. बढ़ी - 58
3. अनथ - 14
4. बढ़ी - 15
5. बढ़ी - 116
6. भारत-भारती - 13
7. भारत-भारती - पूरा सेट 120
41) "खाओ-पिओ, मौजे करो, खेलो-हैंसो सो ठीक है।''
आज्ञा निपात।

42) "आह चौरती हुई अभागे की यह छाती!
वह पुकार की प्रखर धार थी, धैस्ती आती।''
शोक निपात।

43) क्या क्षत्रिय-तन नहीं किया मैंने भी ध्यान?
राप में दोनों ठीक मरण हो चाहे मारण।''
प्रश्न निपात।

44) "पिता अभी कह गये, "सदा तू सच्चा रहना!
स्वयं जो न कर सके, दूसरे से मत कहना।''
आज्ञा निषेध निपात।

45) "हा! हा! खाती हू न हाय! तुम यों कहो!
शान्त रहो दुर्भाग्य जानकर सब सहो।''
शोक निपात।

46) "न लो लुट का नाम, पाप है पाप ही।
फल पावेगी सभी किये का आप ही।''
निषेध निपात।

47) "नर होकर भी हाय सताता है नारी को।
अनाचार क्या कभी उचित है बल्लारी को?''
शोक, प्रश्न निपात।

1  भारत - भारती - पृ0 सं0 -121
2  अजित - 15
3  वही - 21
4  वही - 72
5  किसान - 28
6  किसान = पृ0 सं0 - 29
7  हैरतश्री - पृ0 सं0 - 22
1. सैरन्द्र - पूरे सं0 - 22
2. हिहिन्दा - पूरे सं0 - 9
3. वधी - पूरे सं0 - 35
4. शिवित - पूरे सं0 - 5
5. वधी - पूरे सं0 - 11
6. वन-वैभव - पूरे सं0 -30
7. वधी - पूरे सं0 - 5
"वस्त्र अर्जुन, सत्तर जाओ! और तुम उन्हें छुड़ा लाओ।"²
आज्ञा निपात।

"जा मेंटा कवाचित्‍ सदा के लिए "हाय रे"।²
शोक निपात।

"रोके नहीं।" ठाकुर ने आज्ञा यह उनकी।³
आज्ञा निपात।

"भोजन न था हाय मेरे यीवन के भाग्य में।
यों ही यहाँ आया और यों ही अब में चला।"⁴
शोक निपात।

"क्या कह रहे हो तुम, जान नहीं पड़ता।
मेरी भावनाएं आज यों ही कुछ थोड़ी क्या।"⁵
प्रश्न निपात।

"राम राम! बोली वह नारी घृणा—भाव से
तो फिर तुम्हें ये घर लाये क्यों तुम्ही कहो।"⁶
विस्मयादि ॥ घृणा ॥ प्रश्न निपात।

"भोजन न छोड़े, अहा। अन्न मय प्राण हैं।"⁷
निपात निपात।

"वैर किवा प्रेम? यदि वैर ही भाग्य में,
तो क्यों आपकी ही असि आपके विस्तार हो।"⁸
प्रश्न निपात।

1  वन—वैभव - ४० सं - ३३
2  विकट-भट - ४० सं - ९
3  विकट भट - ४० सं - ११
4  अर्जुन और विसंजन - ४
5  अर्जुन और विसंजन - ४० सं - ५
6  सिद्धराज - ४० सं - ९
7  सिद्धराज - ४० सं - १७
8  वही  पू० सं - ८५
“जाओ बच्चों तुम अनन्त मे, विचरो यही विचक।” 1
आजा निपात।

“अत्यंत भय हत्ता! कहाँ से वह अनन्तता लायें।” 2
प्रश्न निपात।

“आहा! उसी में एक कुदुम-सा वह जन भी खिल जावे।” 3
हर्ष निपात।

“इतना गौरव कैसे होले छोटा मेरा विल्ल?” 4
प्रश्न निपात।

“स्वामि शुभे तुम्हारा, आहा! निरंच्छ विष्णु की सुध्दे, पर अपनी सीमा में आकर रुक रहती है धुंध।” 5
हर्ष निपात।

गुप्तजी के काव्यनिपात ब्रजवती शेष कोटि की है, जिससे काव्य में चाहता आ गयी है, शब्द सौदर्य के साथ भावसौदर्य में भी अभिवृद्धि हुई है। जब तक इस तरह का चम्कार काव्य में न हो, काव्य-काव्य नहीं कहलाता। शेष काव्य तो वही है जो ब्रजवती के माध्यम से जनमानस का कठिनाई बना। गुप्त जी की अपनी अलावा विशेषता है, उनके काव्य की आभिस्वरूपी इसी बात से हैं, उसमें निपातों का सुंदर तत्काल प्रश्न है। इन प्रश्नों के द्वारा उन्हें शेष कवि बनाया है।

1  ढापर – पृ0 सं0 – 85
2  नहीं – पृ0 सं0 – 132
3  नहीं 5  पृ0 सं0 –107
4  पृथ्वी पुत्र – 21
5  पृथ्वी पुत्र – 17